Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 GISRRJ | Volume 4 | Issue 5 | ISSN : 2582-0095

भारतीय संस्कृति में नारी (कालिदास के परिप्रेक्ष्य में)

डॉ0 अंजलि उपाध्याय
पी–एच0डी0 (संस्कृत)

Article Info
Volume 4 Issue 5
Page Number : 200-207

Publication Issue :
September-October-2021

Article History
Accepted : 01 Sep 2021
Published : 15 Sep 2021

सारांश– प्राचीन भारतीय समाज में नारी विषयक दृष्टिकोण उदार एवं विशाल था। वैदिक आर्यों की दृष्टि में नारी धर्म एवं अर्थ की प्रदात्री, वैभव और सांख्य की जननी, गृहलक्ष्मी रूपा और सर्वपूज्या समझी जाती थी। मनु भी इसी सिद्धान्त में विश्वास करते हैं कि जहाँ नारियों का आदर एवं सम्मान होता है वहाँ देवता निवास करते हैं और जहाँ उनका अपमान एवं अनादर होता है वहाँ सभी क्रियाएँ निष्फल सिद्ध होती है। शत्पथ ब्राह्मण में कहा गया है कि स्त्री पुरुष की आत्म का आधा भाग है। महाभारत में भी नारी के माहात्म्य के विषय में लिखा गया है कि भार्या पुरुष का आधा भाग है। देश के महान समाजसुधारक लाला जाजपतराय ने ठीक ही कहा है कि स्त्रियों का प्रश्न पुरुषों का प्रश्न है, चाहे भूतकाल हो, चाहे भविष्य, पुरुषों की उन्नति बहुत कुछ स्त्रियों की उन्नति पर निर्भर है। हिन्दू–संस्कृति में नारी के महनीय स्थान को परखने के लिए अपनी संस्कृति के स्वरूप को हमें पहचानना होगा। नारी त्याग और तपस्या की जाज्वल्यमान विभूति है। महाकवि कालिदास आर्य–संस्कृति के प्रतिनिधि कवि थे। उनकी कृतियों में हमें कन्या रूप में नारी का चित्रण उपलब्ध होता है। उन्होंने आर्य कन्या के आदर्श को 'पार्वती' के रूप में अभिव्यक्त किया है। यह सार्वभौमिक सत्य है कि नर और नारी एक दूसरे के पूरक हैं। समाज रचना के लिए नर और नारी स्तम्भ स्वरूप है। अतः दोनों को पारस्परिक सामंजस्य एवं सहयोग से कार्य करना चाहिए और एक दूसरे के प्रति उदार एवं सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण रखना चाहिए। नारी पर पुरुष की प्रभुता अनाधिकार चेष्टा है। पुरुष द्वारा नारी का अनादर एवं अपमान उसके लिए सुखद न होकर दुःखद ही है। इससे दाम्पत्य एवं गृहस्थ जीवन अशान्ति एवं कलह का आलय बन जाता है जो अन्त में समाज के लिए घातक तत्त्व सिद्ध होता है। नारी का पतन, समाज का पतन है और नारी का उत्कर्ष समाज का उत्कर्ष है। अतः नारी को समाज की प्रगति का मूल मानकर उसका सर्वथा आदर करना चाहिए। यही समाज व उसके कर्णधारों के लिए सन्देश है।

मुख्य शब्द– भारतीय संस्कृति, हिन्दू, कालिदास, नारी, महत्त्व।

मानव–सृष्टि में नर और नारी का स्थान एक दूसरे के पूरक हैं। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व सम्भव नहीं है। दोनों की प्रकृति और कृति भिन्न हो सकती है, किन्तु दोनों का लक्ष्य भिन्न नहीं

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

है। पथ भी एक ही है। उनके जिस परिपार्श्व में पार्थक्य दृष्टिगोचर होता है वह एकता का साधक है बाधक नहीं। **न तो नर अपने निमित्त है और न नारी।** जिस प्रकार गाड़ी अपने दोनों पहियों से ही गन्तव्य पर पहुँच सकती है, उसी प्रकार मानव सृष्टि की लक्ष्य सिद्धि भी नर और नारी दोनों से ही सम्भव है। सृष्टि की गति दोनों से है एक से नहीं। नर का स्त्री रूप विग्रह ''नर नरयोर्वृद्धिश्च'' सूत्र से नारी शब्द की सिद्धि होती है। मनुष्य की शक्ति को ही नारी कहा जाता है, उसके बिना मनुष्य असमर्थ होता है।

प्राचीन भारतीय समाज में नारी विषयक दृष्टिकोण उदार एवं विशाल था। वैदिक आर्यों की दृष्टि में नारी धर्म एवं अर्थ की प्रदात्री, वैभव और सांख्य की जननी, गृहलक्ष्मी रूपा और सर्वपूज्या समझी जाती थी। भरत मुनि ने भी अपने 'नाट्यशास्त्र' में इसी बात का समर्थन किया है। उनके अनुसार संसार में मानवमात्र का चरम लक्ष्य सुख है और सुख का मूलाधार नारी है।

सर्व प्रायेण लोकोऽयंसुखमिच्छति सर्वदा।
सुखस्य च स्त्रियों मूलं ना नाशीलधराश्च ताः।।

(नाट्यशास्त्र 20–93)

मनु भी इसी सिद्धान्त में विश्वास करते हैं कि जहाँ नारियों का आदर एवं सम्मान होता है वहाँ देवता निवास करते हैं और जहाँ उनका अपमान एवं अनादर होता है वहाँ सभी क्रियाएँ निष्फल सिद्ध होती है।

''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता

शत्पथ ब्राह्मण में कहा गया है कि स्त्री पुरुष की आत्म का आधा भाग है। इसलिए जब तक पुरुष स्त्री को प्राप्त नहीं कर लेता तब तक प्रजोत्पादन न होने से वह अपूर्ण रहता है।[3]

महाभारत में भी नारी के माहात्म्य के विषय में लिखा गया है कि भार्या पुरुष का आधा भाग है। वह उसका सबसे उत्तम मित्र है। भार्या त्रिवग्र का मूल है और संसार सागरसे तैरने के इच्छुक पुरुष के लिए भार्या ही प्रमुख साधन है।[4]

प्राचीन संस्कृति एवं सभ्यता के विवेचक डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल के मतानुसार– ''स्त्री वृत्त का व्यास है, और पुरुष उसकी परिधि है। जिस प्रकार वृत्त के व्यास को तिगुना करके परिधि बनती है, उसी प्रकार स्त्री के जीवन से गुणित होकर पुरुष का जीवन बनता है। यही पति पत्नी या गृहस्थ के जीवन का साज–संगीत है।[5] देश के महान समाजसुधारक लाला जाजपतराय ने ठीक ही कहा है कि स्त्रियों का प्रश्न पुरुषों का प्रश्न है, चाहे भूतकाल हो, चाहे भविष्य, पुरुषों की उन्नति बहुत कुछ स्त्रियों की उन्नति पर निर्भर है।

नारी भारतीय संस्कृति मे अतीव उन्नत गौरव की अधिकारिणी सदा से रही है। इसीलिए तो भारतीय समाजशास्त्रियों ने **''न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति''** का शंख निनाद किया। यह कथन स्त्री

समाज की निन्दा या अपमान का सूचक नहीं है। प्रव्युत वस्तुस्थिति का द्योतक है। नारी के तीन रूप हैं–कन्या, पत्नी तथा माता और इन तीनों ही दशाओं मं उसकी रक्षा, मान–मर्यादा तथा प्रतिष्ठा के संरक्षण का पवित्र कार्य पुरुष के ऊपर ही निर्भर करता है। पुरुष मात्र का सूचक वेद का महनीय शब्द है– 'वीर' सारांश यह है कि पुरुष वही है, जो वीर हो वीर्य सम्पन हो अपने आश्रित की रक्षा करने की क्षमता रखता हो। वैदिक ऋषियों ने इस वीर्य के प्रतीक 'वीर' नानधारी पुरुष के संरक्षण में 'नारी' की व्यवस्था कर उचित ही कार्य किया, परन्तु दुःख का विषय है कि हम अपने सामर्थ्य से ही सर्वथा च्युत हो गये हैं और अपने आपको बचाने की क्षमता से विहीन होकर हमने अपनी अनमोल धाती के रक्षण से ही अपना मुँह मोड़कर जघन्य अपराध कार्य किया है। अतः नारी की इस वर्तमान दुरावस्था का समस्त दोष पुरुष की नपुसंकता को है।

हिन्दू–संस्कृति में नारी के महनीय स्थान को परखने के लिए अपनी संस्कृति के स्वरूप को हमें पहचानना होगा। हमारी सभ्यता के दो वादपीठ है– त्याग और तपस्या। हमारी सभ्यता किसी की सम्पत्ति पर बलात् अधिकार कर उसे बरबस छीनने और झपटने का उपदेश नहीं देती है। वह गम्भीर स्वर से पुकारती है।

'तेन व्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्वि;नम्' ।[6]

नारी त्याग और तपस्या की जाज्वल्यमान विभूति है। इन्हीं दोनों तत्त्वों के समन्वय से हमारी आर्य नारी का स्वरूप संगठित हुआ है। नारी–जीवन का मूलमंत्र है–त्याग और इस मन्त्र को सिद्ध करने की क्षमता उसे प्रदान की है तपस्या ने।

हम भलीभाँति यह नहीं कह सकते कि उसके जीवन के किस अंश में इन महनीय तत्त्वों के विलास का दर्शन हमें नहीं मिलता है, परन्तु यदि हम उसके पूर्व जीवन को 'तपस्या' का काल और उत्तर जीवन को 'त्याग' का काल माने, तो कथमपि अनुचित नहीं होगा। हमें नारी के तीन रूप दिखाई देते हें– कन्या, भार्या तथा मृातरूप। कौमार्यकाल नारी जीवन की साधनावस्था है तथा उत्तरकाल इस जीवन की सिद्धावस्था है। हमारी संस्कृति के उपासक संस्कृति मनीषियों ने नारी के इन तीन रूपों का विवरण बड़ी ही उत्कृष्टता के साथ किया है–

नारी कन्या रूप में– महाकवि कालिदास आर्य–संस्कृति के प्रतिनिधि कवि थे। उनकी कृतियों में हमें कन्या रूप में नारी का चित्रण उपलब्ध होता है। उन्होंने आर्य कन्या के आदर्श को 'पार्वती' के रूप में अभिव्यक्त किया है। आर्यकन्या को अदम्य, अजेय तथा जितेन्द्रिय बनाने का मुख्य साधन तपस्या ही है। कालिदास ने अपने 'कुमार सम्भव' में उसके महत्त्व को बड़े ही भव्य शब्दों में प्रकट किया है। शिवजी के द्वारा मदन–दहन के अनन्तर भग्न मनोरथा पार्वती जगत की समग्र आशाएँ छोड़कर तपस्या की साधना में जुट गयी। उसकी तपस्या इतनी कठोर थी कि कठिन शरीर से उपार्जित मुनियों की तपस्या उसके सामने नितान्त प्रभाहीन तथा प्रभावहीन

प्रतीत होता है। प्रकृति के नाना प्रकार के कष्टों को झेलकर अन्ततः वह अपनी कामनासिद्धि में सफल होती है। उनका मनोरथ तरू–फल सम्पन्न होता है। अभीष्ट फल प्राप्त होता हे। कालिदास ने पार्वती के तप का रहस्य विशेष रूप से प्रकट किया है–

''इयेष सा कर्तुमवन्ध्य रूपतां समाधिमास्थायतपोभिरात्मनः।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं तथा विधं प्रेमपतिश्चतादृशः''।।[7]

पार्वती की तपस्या का फल था– 'तथाविधंप्रेम' उच्च कोटि का अलौकिक प्रेम, और 'तादृशःपतिः' उसी प्रकार का मृत्यु को जीतने वाला पति। जगत के समस्त पति मृत्यु के क्रीत–दास हैं। एक ही व्यक्ति मृत्यु को जीतने वाला है और वह है मृत्युंञ्जय महादेव। मृत्यु को जीतने की क्षमता एक में ही है और वह व्यक्ति है देवों मं महान देव अर्थात् महादेव। आज तक कोई भी कन्या मृत्युंजय को प्रति वरण करने में समर्थ नहीं हुई, और इस युगल–जोड़ी का प्रेम भी कितना अनुपम उत्कट, एवं अलौकिक है। कालिदास ने 'तथाविधं' शब्द के भीतर गम्भीर अर्थ की अभिव्यंजना की है। शंकर ने पार्वती को अपने मस्तक पर स्थान दिया। आदर की भी एक सीमा होती है। पत्नी को इतना उच्च स्थान प्रदान करना सत्कार का महान् प्रकर्ष है, आदर की पराकाष्ठा है। अन्य देवताओं में से किसी ने कभी अपनी पत्नी को इतनी गौरव प्रदान नहीं किया गौरी की यह साधना भारतीय कन्याओं के लिए अनुकरणीय वस्तु है। हमारी कन्याओं के सामने एक ही आदर्श है और वह है पार्वती।

नारी पत्नी रूप में–संस्कृत कवियों ने पत्नी रूप में नारी का सुचारू रूप में चित्रण किया है वाल्मीकि, व्यास, कालिदास और भवभूति इन महामान्य कवियों ने भारतीय पत्नी की रूपछटा का वर्णन बड़े ही उत्कृष्ट शब्दों में किया है। भगवती जनक नन्दिनी के शील–सौन्दर्य की ज्योत्स्ना किस व्यक्ति के हृदय में उपशम तथा शान्ति नहीं प्रदान करती? जानकी का चरित्र भारतीय पत्नियों के सम्मुख महान आदर्श का द्योतक है। वाल्मीकीय रामायण के अनेक प्रसंग में इस कथन के प्रमाणभूत है। रावण के द्वारा बारम्बार प्रेम का प्रस्ताव रखने पर सीता के जो अवहेलना सूचक वचन हैं वे भारतीय नारी के गौरव को सदा उद्घोषित करते रहेगे। वह कहती है कि इस निशाचार रावण से प्रेम करने की बात तो दूर रही मैं तो इस अपने पैर से भी नहीं छू सकती–

''चरणेनापि सत्येन न स्पृशेयं निशाचरम्।
रावणं किं पुनरहं कामयेयं विगर्हितम्।।[8]

मेरे चरित्र पर लांछन लगाना कथमपि उचित नहीं है, मेरे निर्बल अंश को पकड़कर आपने आगे किया है परन्तु मेरे चरित्र के सबल अंश को पीछे ढकेल दिया है। नारी का दुर्बल अंश है– उसका नारीत्व स्त्रीत्व और सबल अंश है– पत्नीत्व और पातिव्रत। नरशार्दूल! आप मनुष्यों में श्रेष्ठ है, परन्तु क्रोधावेश में आकर आपका यह कथन साधारण पामरजन के समान है। मैं आपकी

हृदय से भक्ति करती हूँ। मेरा स्वभाव निश्छल और पवित्र है। आश्चर्य है कि आप जैसे नर शार्दूल ने मेरे स्वभाव को मेरी भक्ति को तथा पाणिग्रहण को पीछे ढकेल दिया है। मेरा उपहास करने के लिए मेरे स्त्रीत्व को आगे रखा है–

"त्वया तु नर शार्दूल क्रोध मेवानुवर्तता।
लघुनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरस्कृतम्।।
न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये बालेन पीड़ितः।
मम भक्तिश्च शीलं च सर्व ते पृष्ठतःकृतम्।।

कितनी ओजस्विता भरी है इन सीधे–सादे निष्कपट शब्दों में। अनादृता भारतीय ललना का यह उद्‌गार कितना हृदय–बेधक है? सुनते ही सहृदय व्यक्ति की आँखों में सहानुभूति के आँसू छलक पड़ते हैं। समाज में पति का सम्मान एवं स्नेह–प्राप्ति ही प्रतिव्रता नारी का चरम ध्येय था। भतृस्नेह की अधिकारिणी नारी मर जाने पर भी अजर–अमर मानी जाती है–

"धन्या सा स्त्रीयां तथा वेत्ति भर्ता।
भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाप्यदग्धा।।[9]

इसीलिए विवाह आदि के अवसर पर नारी को सौभाग्यवती होने के साथ–साथ 'भर्तृबर्हुमताभव' भतुबर्हुमान सूचक महादेवी शब्दं लभस्व' भर्तुरभिमताभव आदि आशीर्वाद भी परिवार जन की ओर से दिये जाते थे।

वस्ते! भर्तुबर्हुमता भव।[10]

पति द्वारा निराहत नारी का जीवन निष्फल सा होता था। कुलवधू अपने चरित्र एवं आचरण पर कोई आक्षेप सहन नहीं कर सकती थी। वह अपनी चरित्र्य शुद्धि के प्रत्ययार्थ कठोर से कठोर परीक्षाएँ देने को तत्पर रहती थी। 'अभिषेक नाटक' में सीता राम के विश्वास के लिए अग्नि में प्रविष्ट हो जाती है।

भार्या पति के सुख–दुःख की सहचरी थी। जीवन की सभी अवस्थाओं में वह पति की अनुगामिनी थी। वह वस्तुतः अपनी 'अर्द्धांगिनी' अभिधा को सार्थक करती थी। संकट–काल में तो वह अपने स्वामी की सच्ची सहचरी थी। विपत्ति में वह तन, मन, धन सब कुछ पति पर न्योछावर कर देती थी।

पति के कल्याण तथा मंगल के निमित्त आत्मनिषेध या आत्मसमर्पण ही नारीत्व है। पुरुष की पूर्ति नारी के संगम में है। नारी के बिना पुरुष की पूर्ति नारी के संगम में है। नारी के बिना पुरुष का जीवन अधूरा है। बिना नारी के सहयोग के वह अपने पुरुषार्थ में कृत कार्य नहीं हो सकता। नारी पशु–प्रवृत्ति की प्रतीक नहीं है, वह तो दिव्य गुणों की प्रतिमा है अलौकिक गुणों की मूर्ति है।

नारी मातृ रूप में–

परिवार में नारी का स्थान उसके मातृत्व पर आधारित था। परिवार में माता का विशिष्ट एवं सम्माननीय स्थान था। पुत्रवती नारी वंश परम्परा की अविच्छिन्न विधात्री होने के कारण कल की प्रतिष्ठा होती थी।

'सरोपितेऽयात्मनि धर्म पत्नी व्यक्ता मया नाम कुलप्रतिष्ठा।''[11]

वह पुत्र रूप में अपने पतिकुल के वंश सूत्र को धारण करती थी। 'अभिज्ञान शाकुन्तल'' में विरह–पीड़ित दुष्यन्त के शोक के कारण उसका शकुन्तला के प्रति अखण्ड प्रेम तो है ही साथ ही उसके खेद का हेतु यह भी है कि उसने गर्भवती शकुन्तला का परित्याग कर अपने वंश को ही समाप्त कर दिया। सन्तानवती स्त्री वंशप्रवर्तिका होने के कारण पति के हृदय की भी अधिष्ठात्री होती थी, उसे पति का आदर एवं सम्मान प्राप्त होता था। 'विक्रमोर्वशीयम्' में राजा पुरुरवा अपने पुत्र आयु को देखकर उसकी माता उर्वशी को ''पुत्रवती का स्वागत है'' ऐसा कहकर सम्मानपूर्वक अर्द्धासन पर अधिष्ठित करता है।

स्वागतं पुत्रवत्यै। इत आस्यताम्।[12]

मातृत्व नारी की चरम परिणति थी। 'माता' की सुधा वर्षिणी अमिधा को प्राप्त कर नारी अपने जीवन को सार्थक समझती थी। वीर–पुत्र की माता बनने में वह गौरव का अनुभव करती थी। 'मालविकाग्निमित्र' में वसु मित्र की विजय पर परिव्राजिका द्वारा बधाई देने पर धारिणी यही कहती है कि मुझे यही सुख है कि मेरा पुत्र भी पिता के समान पराक्रमशाली बने। यही कारण था कि नारी को सदा चक्रवर्ती और वीरपुत्र की माता बनपने का आशीर्वाद दिया जाता था।

''वत्से! वीरप्रसविनी भव''।[13.]

नारी के मातृरूप का समाज में यथेष्ट सम्मान था। माता मनुष्यों के लिए देवताओं की भी देवता मानी जाती थी। उसकी आज्ञा सर्वावस्थाओं में शिरोधार्य होती थी। पुत्र माता के आदेश से अकार्य तक करने को बाध्य हो जाता था। ''मध्यमव्यायोग'' में घटोत्कच अपनी माता के व्रतपारणार्थ उसके आदेश से ब्रह्महत्या तक के लिए उद्यत हो जाता है।

माता किल मनुष्याणां दैवता नां च दैवतम्।।14

माता एवं पत्नी के अतिरिक्त नारी का प्रेयसी रूप भी दृष्टिगोचर होता है। प्रेयसियाँ दो प्रकार की थी एक तो वे जो विवाह के पश्चात पति को आराध्य समझकर उसी से एकनिष्ठ प्रेम करती थी और दूसरी वे जो विवाह से पूर्व ही किसी पुरुष को अपना तन–मन समर्पित कर देती थी। रानी औशीनरी, महारानी धारिणी, सीता, धूता आदि प्रथम प्रकार की और उर्वशी, मालविका, शकुन्तला, कुरंगी, वासवदत्ता आदि दूसरे प्रकार की प्रेयसियाँ थीं।

इस प्रकार संस्कृत साहित्य में नारी का प्रभाव विशेष रूप से अभिव्यक्त माना गया है। वह शक्ति की मूर्ति, प्रेम का अवतार, अनुराग की वाटिका, रस का उत्स, हृदय–कली को विकसित करने वाले प्रभात–वायु का हिलोरा तथा मानस में आनन्द–लहरी उठाने वाला मन्द–मन्द प्रवाहित पवन है। संस्कृत–साहित्य में नारी की शक्ति को पहचानकर उसे उचित रूप में अभिव्यक्त किया गया है।

यह सिर्फ कहने की आवश्यकता नहीं है कि कोमल, संवेदनशील नारी समाज और सामाजिक क्रिया–कलाप का अटूट अंश है। सभ्यता और संस्कृति के विकास में उसने सदैव सक्रिय योगदान दिया है, दे रही है और देती रहेगी। एक ओर नारी के लोरी गाने वाले मधुर कण्ठ में राष्ट्र नायकों को कर्त्तव्य की प्रेरणा देने की क्षमता विद्यमान है तो दूसरी ओर उसके पालना झुलाने वाले करों में विश्व पर शासन करने की शक्ति भी निहित है। सुशीलता, तितिक्षा, समर्पण, उत्सर्ग, व्यवस्था, लज्जा और प्रेम की साक्षात्, प्रतिमा नारी, कन्या, गृहिणी सहचरी और माता के कर्मठ रूपों मे परिवार, समाज और राष्ट्र की मंगलविधात्री है।

यह सार्वभौमिक सत्य है कि नर और नारी एक दूसरे के पूरक हैं। समाज रचना के लिए नर और नारी स्तम्भ स्वरूप है। अतः दोनों को पारस्परिक सामंजस्य एवं सहयोग से कार्य करना चाहिए और एक दूसरे के प्रति उदार एवं सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण रखना चाहिए। नारी पर पुरुष की प्रभुता अनाधिकार चेष्टा है। पुरुष द्वारा नारी का अनादर एवं अपमान उसके लिए सुखद न होकर दुःखद ही है। इससे दाम्पत्य एवं गृहस्थ जीवन अशान्ति एवं कलह का आलय बन जाता है जो अन्त में समाज के लिए घातक तत्त्व सिद्ध होता है। नारी का पतन, समाज का पतन है और नारी का उत्कर्ष समाज का उत्कर्ष है। अतः नारी को समाज की प्रगति का मूल मानकर उसका सर्वथा आदर करना चाहिए। यही समाज व उसके कर्णधारों के लिए सन्देश है।

नारी के इसी कल्याणमय रूप को लक्ष्य कर कविवर जयशंकर प्रसाद ने उसके प्रति श्रद्धा सुमन इन शब्दों में अर्पित किये–

नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत–नभ पग तल में,
पीयूष–स्त्रोत–सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।।

सन्दर्भ ग्रन्थसूची

1. नाट्यशासत्र, 20–29
2. मनुस्मृति, 3.56

3. शतपथ ब्राह्मण–5.2, 1–10
4. महाभारत,आदि पर्व, 74–41
5. हिन्दू परिवार–मीमांसा की भूमिका, पृ0 25
6. ईशा वास्पोपनिषद्,
7. कुमार सम्भव,
8. वा0रा0सु0 5/26/10
9. स्वप्नवासव दत्तम, 1.13
10. अभिज्ञान शाकुन्तलम्–अंक–4
11. अभिज्ञान शाकुन्तलम्–6.24
12. विक्रमोर्वशीयम्–अंक–5
13. मध्यम व्यायोग।